सारग्राहिता

द्वितीय पुष्प

प्रकाशक
श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान
गहवर वन, बरसाना, मथुरा
उत्तर प्रदेश २८१ ४०५
भारतवर्ष

अंतर्वस्तु

अंतर्वस्तु i
प्रकाशकीय ii
श्री रमेश बाबा जी महाराज 1
'भक्त' सुख-सुविधायें नहीं चाहता 7
अपना नहीं है कोई इक यार जमाने में 8
'भक्त' वासनाओं का भिखारी नहीं होता 9
आसक्ति पाप है 11
लगन हरि से लगा बैठे जो होगा देखा जायेगा 12
सच्ची पढ़ाई 14
धाम-निष्ठा 15
गरब गोविन्दहिं भावत नाहीं 16
'अमानी' ही सच्चा भक्त 17
सबसों ऊँची प्रेम सगाई 18
भगवान् भी बिकता है 19
सच्ची लगन 21
सबसे बड़ा धन 22
'भक्त' भगवान् से बड़े हैं 23
अन्तःकरणस्थ विषय-कीच को कैसे हटायें? 25
धन का एकमात्र फल 'धर्म' 26
सबसे बड़ा पापी – निन्दक 28
अर्थ ही सबसे बड़ा अनर्थ 29
शरणागत का पालन भगवान् करते हैं 32
भगवान् से मिलने का सुगम रास्ता – सत्संग 34
संयम यज्ञ 36
सबसे बड़ा अज्ञान – अपने को कुछ मानना 37
प्रेमाभक्ति प्राप्ति की सबसे पहली सीढ़ी 'श्रद्धा' 38
भक्तों का कोप भी कृपा है 39
भय का कारण – देह-गेहासक्ति 41
सबसे बड़ी उपलब्धि भक्त-संग का मिलना 44
विरोध से होता है भक्त महिमा का प्राकट्य 45
सन्त-असन्तों के लक्षण 47
बिना संत-संग के भक्ति नहीं 49
राधे किशोरी दया करो 51

प्रकाशकीय

असार संसार में भटकते जीवों के लिए 'सार तत्त्व' क्या है ? विचार करने पर प्रत्येक बुद्धिमान प्राणी इस बात को समझ सकता है कि मनुष्य-जन्म की प्राप्ति का ध्येय किसी आत्यन्तिक उत्तम लाभ की प्राप्ति होना चाहिए । 'खाना-पीना, सोना, मैथुनादि सांसारिक भोगजनित सुख' इसका परम लाभ नहीं है। यह सब तो पशु-पक्षी कीट योनियों में भी सुलभ है। मनुष्य शरीर अनन्तकाल की यमयातनाओं और विविध योनियों की प्राप्ति के पश्चात् भगवत्कृपा से मिलता है, यदि पुनः भवाटवी के घोर तिमिर से त्राण पाना है तो भगवत्कृपा की वाञ्छा ही आपको किन्ही महान् सत्पुरुषों की चरणरज में अभिषिक्त कर मार्ग प्रशस्त कर सकती है । महापुरुषों का अवतरण केवल जीवों के कल्याण के लिए हुआ करता है। गहवरवन बरसाना स्थित मानगढ़ में विराजमान ब्रज के परम विरक्त संत **श्री रमेश बाबा जी महाराज** जो कण-कण में भगवद्भाव रखते हैं; वे सतत् अपनी वाणी से जगत के परम कल्याण का यत्न करते रहते हैं । उन्हीं महापुरुष के द्वारा नित्य आराधनास्थल रसमण्डप में नृत्याराधन के माध्यम से जो आराधना होती है वह लोक, परलोक की समस्त सिद्धियों की दात्री है । उस आराधना के पूर्व के वचनामृत से संचित दिव्योपदेश को सारग्राहिता के द्वितीय पुष्प के रूप में श्री मानमंदिर सेवा संस्थान प्रकाशित कर रहा है ताकि सार तत्त्व की प्राप्ति सभी जीव कर सकें।

श्री रमेश बाबा जी महाराज

गुण-गरिमागार, करुणा-पारावार, युगललब्ध-साकार इन विभूति विशेष गुरुप्रवर पूज्य बाबाश्री के विलक्षण विभा-वैभव के वर्णन का आद्यन्त कहाँ से हो यह विचार कर मंद मति की गति विथकित हो जाती है।

विधि हरि हर कवि कोविद बानी।
कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मो सन कहि जात न कैसे।
साक बनिक मनि गुन गन जैसे॥

(रा.च.मा.बाल. ३)

पुनरपि

जो सुख होत गोपालहिं गाये।
सो सुख होत न जप तप कीन्हे, कोटिक तीरथ न्हाये॥

(सू. वि. प.)

अथवा

रस सागर गोविन्द नाम है रसना जो तू गाये।
तो जड़ जीव जनम की तेरी बिगड़ी हू बन जाये॥
जनम-जनम की जाये मलिनता उज्ज्वलता आ जाये॥

(बाबा श्री द्वारा रचित - ब्र. भा. मा.से संग्रहीत)

कथनाशय इस पवित्र चरित्र के लेखन से निज कर व गिरा पवित्र करने का स्वसुख व जनहित का ही प्रयास है।

अध्येतागण अवगत हों इस बात से कि यह लेख, मात्र सांकेतिक परिचय ही दे पायेगा, अशेष श्रद्धास्पद (बाबाश्री) के विषय में। सर्वगुणसमन्वित इन दिव्य विभूति का प्रकर्ष आर्ष जीवन चरित्र कहीं लेखन-कथन का विषय है?

"करनी करुणासिन्धु की मुख कहत न आवै"

(सू.वि.प.)

मलिन अन्तस् में सिद्ध संतों के वास्तविक वृत्त को यथार्थ रूप से समझने की क्षमता ही कहाँ, फिर लेखन की बात तो अतीव दूर है तथापि इन लोक-लोकान्तरोत्तर विभूति के चरितामृत की श्रवणाभिलाषा ने असंख्यों के मन को निकेतन कर लिया अतएव सार्वभौम महत् वृत्त को शब्दबद्ध करने की धृष्टता की।

तीर्थराज प्रयाग को जिन्होंने जन्मभूमि बनने का सौभाग्य-दान दिया। माता-पिता के एकमात्र पुत्र होने से उनके विशेष वात्सल्यभाजन रहे। ईश्वरीययोजना ही मूल हेतु रही आपके अवतरण में। दीर्घकाल तक अवतरित दिव्य दम्पति स्वनामधन्य श्री बलदेव प्रसाद शुक्ल (शुक्ल भगवान् जिन्हें लोग कहते थे) एवं श्रीमती हेमेश्वरी देवी को संतान सुख अप्राप्य रहा, संतान प्राप्ति की इच्छा से कोलकाता के समीप तारकेश्वर में जाकर आर्त पुकार की, परिणामतः सन् १९३० पौष मास की सप्तमी को रात्रि ९:२७ बजे कन्यारत्न श्री तारकेश्वरी (दीदी जी) का अवतरण हुआ अनन्तर दम्पत्ति को पुत्र कामना ने व्यथित किया। पुत्र प्राप्ति की इच्छा से कठिन यात्रा कर रामेश्वर पहुँचे, वहाँ जलान्न त्याग कर शिवाराधन में तल्लीन हो गये, पुत्र कामेष्टि महायज्ञ किया। आशुतोष हैं रामेश्वर प्रभु, उस तीव्राराधन से प्रसन्न हो तृतीय रात्रि को माता जी को सर्वजगन्निवासावास होने का वर दिया। शिवाराधन से सन् १९३८ पौष मास कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि को अभिजित मुहूर्त मध्याह्न १२ बजे अद्भुत बालक का ललाट देखते ही पिता (विश्व के प्रख्यात व प्रकाण्ड ज्योतिषाचार्य) ने कह दिया –

“यह बालक गृहस्थ ग्रहण न कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहेगा, इसका प्रादुर्भाव जीव-जगत के निस्तार निमित्त ही हुआ है।”

वही हुआ, गुरु-शिष्य परिपाटी का निर्वाहन करते हुए शिक्षाध्ययन को तो गये किन्तु बहु अल्प काल में अध्ययन समापन भी हो गया।

"अल्पकाल विद्या बहु पायी"

गुरुजनों को गुरु बनने का श्रेय ही देना था अपने अध्ययन से। सर्वक्षेत्र कुशल इस प्रतिभा ने अपने गायन-वादन आदि ललित कलाओं से विस्मयान्वित कर दिया बड़े-बड़े संगीतमार्तण्डों को। प्रयागराज को भी स्वल्पकाल ही यह सानिध्य सुलभ हो सका "तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि" ऐसे अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न असामान्य पुरुष का। अवतरणोद्देश्य की पूर्ति हेतु दो बार भागे जन्मभूमि छोड़कर ब्रजदेश की ओर किन्तु माँ की पकड़ अधिक मजबूत होने से सफल न हो सके। अब यह तृतीय प्रयास था, इन्द्रियातीत स्तर पर एक ऐसी प्रक्रिया सक्रिय हुई कि तृणतोड़नवत् एक झटके में सर्वत्याग कर पुनः गति अविराम हो गई ब्रज की ओर।

चित्रकूट के निर्जन अरण्यों में प्राण-परवाह का परित्याग कर परिभ्रमण किया, सूर्यवंशमणि प्रभु श्रीराम का यह वनवास स्थल पूज्यपाद का भी वनवास स्थान रहा। "स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे" इस भावना से निर्भीक घूमे उन हिंसक जीवों के आतंक संभावित भयानक वनों में।

आराध्य के दर्शन को तृषान्वित नयन, उपास्य को पाने के लिए लालसान्वित हृदय अब बार-बार पाद-पद्मों को श्रीधाम बरसाने के लिए ढकेलने लगा, बस पहुँच गए बरसाना। मार्ग में अन्तस् को झकझोर देने वाली अनेकानेक विलक्षण स्थितियों का सामना किया। मार्ग का असाधारण घटना संघटित वृत्त यद्यपि अत्यधिक रोचक, प्रेरक व पुष्कल है तथापि इस दिव्य जीवन की चर्चा स्वतन्त्र रूप से भिन्न ग्रन्थ के निर्माण में ही सम्भव है अतः यहाँ तो संक्षिप्त चर्चा ही है। बरसाने में आकर तन-मन-नयन आध्यात्मिक मार्गदर्शक के अन्वेषण में तत्पर हो गए। श्रीजी ने सहयोग किया एवं निरंतर राधारससुधा सिन्धु में अवस्थित, राधा के परिधान में सुरक्षित, गौरवर्णा की शुभ्रोज्ज्वल कान्ति से आलोकित-अलंकृत युगल सौख्य में आलोडित, नाना पुराणनिगमागम के ज्ञाता, महावाणी जैसे निगूढ़ात्मक ग्रन्थ के प्राकट्यकर्ता "अनन्त श्री सम्पन्न श्री श्री प्रियाशरण जी महाराज" से शिष्यत्व स्वीकार किया।

ब्रज में भामिनी का जन्म स्थान बरसाना, बरसाने में भामिनी की निज कर निर्मित गहवर वाटिका "बीस कोस वृन्दाविपिन पुर वृषभानु उदार, तामें गहवर वाटिका जामें नित्य विहार" और उस गहवरवन में भी महासदाशया मानिनी का मन-भावन मान-स्थान श्री मानमंदिर ही मानद (बाबाश्री) को मनोनुकूल लगा। मानगढ़, ब्रह्माचलपर्वत की चार शिखरों में से एक महान शिखर है। उस समय तो यह बीहड़ स्थान दिन में भी अपनी विकरालता के कारण किसी को मंदिर प्रांगण में न आने देता। मंदिर का आंतरिक मूल स्थान चोरों को चोरी का माल छिपाने के लिए था। चौराग्रगण्य की उपासना में इन विभूति को भला चोरों से क्या भय?

भय को भगाकर भावना की – "तस्कराणां पतये नमः" – चोरों के सरदार को प्रणाम है, पाप-पंक के चोर को भी एवं रकम-बैंक के चोर को भी। ब्रजवासी चोर भी पूज्य हैं हमारे, इस भावना से भावित हो द्रोहार्हणों (द्रोह के योग्य) को भी कभी द्रोहदृष्टि से न देखा, अद्वेष्टा के जीवन्त स्वरुप जो ठहरे। फिर तो शनैः-शनैः विभूति की विद्यमत्ता ने स्थल को जाग्रत कर दिया, अध्यात्म की दिव्य सुवास से परिव्याप्त कर दिया।

जग-हित-निरत इस दिव्य जीवन ने असंख्यों को आत्मोन्नति के पथ पर आरूढ़ कर दिया एवं कर रहे हैं। श्रीमन् चैतन्यदेव के पश्चात् कलिमलदलनार्थ नामामृत की नदियाँ बहाने वाली एकमात्र विभूति के सतत् प्रयास से आज ३२ हजार गाँवों में, प्रभातफेरी के माध्यम से नाम निनादित हो रहा है। ब्रज के कृष्ण लीला सम्बंधित दिव्य वन, सरोवर, पर्वतों को सुरक्षित करने के साथ-साथ सहस्रों वृक्ष लगाकर सुसज्जित भी किया। अधिक पुरानी बात नहीं है, आपको स्मरण करा दें, सन् २००९ में "राधारानी ब्रजयात्रा" के दौरान ब्रजयात्रियों को साथ लेकर स्वयं ही बैठ गये आमरण अनशन पर, इस संकल्प के साथ कि जब तक ब्रज पर्वतों पर हो रहे खनन द्वारा आघात को सरकार रोक नहीं देगी, मुख में जल भी नहीं जायेगा। समस्त ब्रजयात्री भी निष्ठापूर्वक अनशन लिए हुए हरिनामसंकीर्तन करने लगे और उस समय जो उद्दाम गति से नृत्य-गान

हुआ, नाम के प्रति इस अटूट आस्था का ही परिणाम था कि १२ घंटे बाद ही विजयपत्र आ गया। दिव्य विभूति के अपूर्व तेज से साम्राज्य सत्ता भी नत हो गयी। गौवंश के रक्षार्थ गत् ८ वर्ष पूर्व माता जी गौशाला का बीजारोपण किया था, देखते ही देखते आज उस वट बीज ने विशाल तरु का रूप ले लिया, जिसके आतपत्र (छाया) में आज ३५, ००० गायों का मातृवत् पालन हो रहा है। संग्रह परिग्रह से सर्वथा परे रहने वाले इन महापुरुष की भगवन्नाम ही एकमात्र सरस सम्पत्ति है।

यही करुणा करना करुणामयी मम अंत होय बरसाने में ।
पावन गह्वरवन कुञ्ज निकट रज में रज होय मिलूँ ब्रज में ॥

(बाबा श्री द्वारा रचित – ब्र.भा.मा. से संग्रहीत)

परम विरक्त होते हुए भी बड़े-बड़े कार्य संपादित किये, इन ब्रज संस्कृति के एकमात्र संरक्षक, प्रवर्द्धक व उद्धारक ने, गत चतुःषष्टि (६४) वर्षों से ब्रज में क्षेत्रसन्यास (ब्रज के बाहर न जाने का प्रण) लिया एवं इस सुदृढ़ भावना से विराज रहे हैं। ब्रज, ब्रजेश व ब्रजवासी ही आपका सर्वस्व हैं। असंख्यों आपके सान्निध्य-सौभाग्य से सुरभित हुये, आपके विषय में जिनके विशेष अनुभव हैं, विलक्षण अनुभूतियाँ हैं, विविध विचार हैं, विपुल भाव साम्राज्य है, विशद अनुशीलन हैं, इस लोकोत्तर व्यक्तित्व ने विमुग्ध कर दिया है विवेकियों का हृदय। वस्तुतः कृष्णकृपालब्ध पुमान् को ही गम्य हो सकता है यह व्यक्तित्व। रसोदधि के जिस अतल-तल में आपका सहज प्रवेश है, यह अतिशयोक्ति नहीं कि रस ज्ञाताओं का हृदय भी उस तल से अस्पृष्ट ही रह गया।

आपकी आंतरिक स्थिति क्या है, यह बाहर की सहजता, सरलता को देखते हुए सर्वथा अगम्य है। आपका अन्तरंग लीलानंद, सुगुप्त भावोत्थान, युगल मिलन का सौख्य इन गहन भाव-दशाओं का अनुमान आपके सृजित साहित्य के पठन से ही संभव है। आपकी अनुपम कृतियाँ – श्री रसिया रासेश्वरी, स्वर वंशी के शब्द नूपुर के, ब्रजभावमालिका, भक्तद्वय चरित्र इत्यादि हृदयद्रावी भावों से भावित कृतियाँ हैं।

आपका त्रैकालिक सत्संग अनवरत चलता ही रहता है। साधक-साधु-सिद्ध सबके लिए सम्बल हैं आपके त्रैकालिक रसार्द्रवचन। दैन्य की सुरभि से सुवासित अद्भुत असमोर्ध्व रस का प्रोज्ज्वल पुंज है यह दिव्य रहनी, जो अनेकानेक पावन आध्यात्मास्वाद के लोभी मधुपों का आकर्षण केंद्र बन गयी। सैकड़ों ने छोड़ दिए घर-द्वार और अद्यावधि शरणागत हैं। ऐसा महिमान्वित-सौरभान्वित वृत्त विस्मयान्वित कर देने वाला स्वाभाविक है।

रस-सिद्ध-संतों की परम्परा इस ब्रजभूमि पर कभी विच्छिन्न नहीं हो पायी। श्रीजी की यह गह्वर वाटिका जो कभी पुष्पविहीन नहीं होती, शीत हो या ग्रीष्म, पतझड़ हो या पावस, एक न एक पुष्प तो आराध्य के आराधन हेतु प्रस्फुटित ही रहता है। आज भी इस अजरामर, सुन्दरतम, शुचितम, महत्तम, पुष्प (बाबाश्री) का जग स्वस्तिवाचन कर रहा है। आपके अपरिसीम उपकारों के लिए हमारा अनवरत वंदन, अनुक्षण प्रणति भी न्यून है।

प्रार्थना है अवतरित प्रीति-प्रतिमा विभूति से कि निज पादाम्बुजों का अनुगमन करने की शक्ति हम सबको प्रदान करें।

आपकी प्रेम प्रदायिका, परम पुनीता पद-रज-कणिका को पुनः-पुनः प्रणाम है।

'भक्त' सुख-सुविधायें नहीं चाहता

जब से तेरे चरणों में, मन अपना जरा लगाया ।
फीकी पड़ गई सारी दुनिया, जिसमें रहा लुभाया ॥

भगवान् के भक्त को संसारी सुख-सुविधाएँ अच्छी नहीं लगती हैं। मछली को दूध में रखो तो मर जायेगी, वह तो पानी में जियेगी। उसी तरह कृष्ण-भक्त को संसार के सुखों में रख दो तो वह मर जाएगा। जो लोग संसार के सुख चाहते हैं तो इसका मतलब उनका मन भगवान् में नहीं है।

रमा बिलासु राम अनुरागी ।
तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥

(रा.च.मा.अयो. ३२४)

जिसका भगवान् में प्रेम है, वह रमा के विलास अर्थात् लक्ष्मी के वैभव को ऐसे छोड़ देता है जैसे मनुष्य उल्टी करके फिर उसकी ओर नहीं देखता है और जो छोड़कर पुनः उसे ग्रहण करता है वह कुत्ता है, भक्त नहीं है; क्योंकि कुत्ता उल्टी करके फिर उसे चाटता है।

एक पुण्डरीक नाम के भक्त हुए हैं। उनकी स्त्री भी भक्ता थी। भिक्षा माँगकर दोनों जीवन-निर्वाह करते थे। वहाँ के राजा ने बहुत कोशिश की उनको कुछ देने की; परन्तु उन्होंने कुछ नहीं लिया।

अंत में राजा बोला – 'आप भिक्षा माँगने हमारे यहाँ भी आया करो।' वे जब राजा के यहाँ भिक्षा लेने गये तो राजा के कहने पर रानी ने उनके भिक्षा के चावलों में मणि-मोती, रत्न मिला दिये। वे भिक्षा लेकर चले आये। एक दिन रानी ने राजा साहब से कहा – जाओ देख करके आओ, अब तो उनके यहाँ खूब सम्पत्ति इकट्ठी हो गयी होगी क्योंकि मैं प्रतिदिन उनके भिक्षा के चावलों में मणि-मोती मिला देती हूँ। राजा उनकी कुटिया पर दर्शन करने के लिए गया तो देखा – पहले

की तरह ही गरीबी में रहते हैं। राजा ने पूछा – 'भिक्षा ठीक से मिलती है कि नहीं।' वे बोले – 'राजन्! आजकल भिक्षा में कंकड़-पत्थर मिलकर बहुत आते हैं। हमारी स्त्री उनको बीनकर अलग फेंक देती है।' राजा ने जाकर देखा तो कूड़े में मणि-मोती पड़े थे, जिनको रानी भिक्षा में मिला देती थी।

इसको कहते हैं भक्त। जो गोपाल जी के सुख के आगे मणि-मोतियों को कूड़ा-करकट भी नहीं समझता है।

अपना नहीं है कोई इक यार जमाने में

हर मनुष्य यही भूल करता है, संसार में ममता (अपनापन) जोड़ लेता है और इसी कारण वह भगवान् से दूर चला जाता है। जबकि इस संसार में कोई भी अपना नहीं है। अगर विचार करके देखो, तब समझोगे कि प्रत्येक जीव अकेले ही आता है और उसे अकेले ही जाना पड़ता है। तुम चक्रवर्ती सम्राट हो तब भी अकेले ही जाओगे, लाखों सिपाही हैं पर कोई साथ नहीं दे सकता। राजा को अगर पेट में दर्द है तो उस दर्द को न सिपाही बाँट सकता है, न उसकी स्त्री और न ही उसके बेटा-बेटी। विचारकर देखो, अपना कौन है इस संसार में ? हम अज्ञान के कारण संसार को अपना मान लेते हैं, बस इसीलिए भगवान् से दूर हैं।

यह बड़ा आश्चर्य है, सारा संसार देखता है कि कोई भी गया अकेले गया। चाहे अपना पति था, चाहे स्त्री थी, चाहे माँ थी, चाहे बाप था। हर आदमी यह देखता है परन्तु फिर भी संसार में अपनापन नहीं छोड़ता है।

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥

(भा. १०/४९/२१)

कितना भी मातृभक्त लड़का है, श्रवण कुमार बड़े मातृ-पितृ भक्त थे, उन्होंने अपने माँ-बाप को कन्धे पर लादकर पैदल सारे भारत के तीर्थ कराए थे, लेकिन वे भी उनके दुःखों को नहीं बाँट पाये। यह सृष्टि का नियम है, हर प्राणी को सुख-दुःख अकेले ही भोगना पड़ता है लेकिन फिर भी किसी को ज्ञान नहीं होता है कि अपने केवल भगवान् हैं।

जब कोई अपनी ममता को छोड़कर भगवान् से प्रेम करता है तो भगवान् उसके ऋणी हो जाते हैं।

भगवान् ने स्वयं कहा है –

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥

(भा. ९/४/६५)

जब तुम स्त्री, मकान, जमीन-जायदाद, बेटा-बेटी, माता-पिता और अपने प्राणों की ममता छोड़ोगे, तब मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगा।

परन्तु मनुष्य अपनी ममता बचाता है, चोरी करता है, ऊपर से कहता है – हम भगवान् के भक्त हैं और भीतर से मन में चोरी रखता है। लेकिन भगवान् अन्तर्यामी हैं, सब समझते हैं कि इसकी ममता संसार में है, इसीलिए भगवान् नहीं आते हैं।

'भक्त' वासनाओं का भिखारी नहीं होता

सच्चा भक्त बनना चाहिए। जो वासनाओं का भिखारी है, धन-सम्पत्ति, भोगों का लोलुप है, वह भक्त न था और न होगा।

जो भक्त होता है, वह नाम-प्रतिष्ठा, पैसे आदि का भिखारी नहीं होता है। भक्त को कभी वासना की भीख माँगते आज तक न देखा गया और न सुना गया। वासना के भिखमंगे कैसे भक्त बन सकते हैं ? मनुष्य दो कारणों से जगह-जगह भीख माँगता है –

१. चाम (चमड़ी) – किसी स्त्री का गोरा रंग देखा और उस पर मर गए अर्थात् आकर्षित हो गए। चमड़ी चाहे जितनी भी गोरी है, लेकिन उसके भीतर तो वही गन्दा मल-मूत्र भरा हुआ है। मनुष्य भोग के लिए भीख माँगता है, कामिनियों की जूती सिर पर रखता है, ये काली नागिन हमारी ओर एक बार आसक्ति की दृष्टि से देख ही दे। भोगों की भूख है, अब बताओ क्या वह भक्त हो सकता है ? कदापि नहीं हो सकता, वो तो भिखमंगा है और जीवन भर भीख माँगता रहेगा।

२. दाम (दमड़ी) – कोई धनवान आया तो उसकी चाटुकारिता करते हैं, उनके आगे हाथ फैलाकर भीख माँगा करते हैं कागज के नोटों की; आज हम लोग विषयी लोगों से प्रेम करते हैं। कोई सेठ आया तो दौड़ गए कि कुछ दे जाएगा; क्या यही भक्ति है ? ये भक्ति नहीं है, ये केवल एक शुद्ध व्यापार चल रहा है। घर से निकले थे कि वृन्दावन जाकर भजन करेंगे और वहाँ जाकर आशा के समुद्र में डूब गए, अब सेठ जी आयेंगे इतनी भेंट दे जायेंगे। चमड़ी-दमड़ी का उपासक आज तक कहीं भक्त हुआ है, कभी नहीं हो सकता, वह तो भिखमंगा ही रहेगा।

हम बनते हैं भक्त और आशा करते हैं विषयी लोगों की कि ये आया है कुछ भेंट दे जाएगा; धिक्कार है ! विषयियों से आशा करते हो जो खुद भिखमंगे हैं, 'सेठ जी आये हैं' अरे ! सेठ क्यों, ये तो बड़ा भिखमंगा है, इसके पास करोड़ों रुपये हैं फिर भी सोचता है कि हम अरब रुपये इकट्ठा कर लें। इतने बड़े भिखमंगे से हम आशा लगाते हैं कि हमको

कुछ दे जाएगा। हम भक्त कैसे बन सकते हैं ? किसी जीव की आशा की और भगवान् के विश्वास का महल टूट गया, भगवान् का विश्वास समाप्त हो गया।

मोर दास कहाइ नर आसा।
करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥

(रा.च.मा.उत्तर. ४६)

किसी स्त्री की ओर आशा से देख दिया, किसी धनिक की ओर आशा से देख दिया तो भगवान् का विश्वास खत्म, भक्ति खत्म। क्यों ? क्योंकि अब तुम भक्त नहीं रहे, चिड़िया फाँसने लग गए। ये बड़ा ऊँचा सेठ है इससे बड़ा पैसा मिलेगा, ये बड़ी सुन्दर स्त्री है इससे भोग मिलेगा।

अब तुम्हारी भक्ति क्या बन गयी ?

'प्रीति रीति बाजारी' अब तुम बाजारी बिजनेसमैन बन गए, अब तुम भक्ति के समुद्र में नहीं डूबोगे, अब तो तुम्हारा जीवन आशा के समुद्र में डूब जाएगा। ये आया ये कुछ देगा, ये आयी ये मुस्कुरायेगी, आनन्द दे जायेगी। इसी आशा में तुम्हारा जीवन चला जाएगा। जो थोड़ी-बहुत भक्ति आयी थी, वह भी खत्म हो जायेगी सदा के लिए।

आसक्ति पाप है

'पाप' आसक्ति से चिपकता है। अगर आसक्ति नहीं है तो पाप नहीं चिपकेगा। यहाँ तक कि तुम अरब-खरबपति हो, यदि तुम्हारी धन में आसक्ति नहीं है तो तुम्हें पाप नहीं लगेगा।

पैसा पाप नहीं है, आसक्ति पाप है।

स्त्री पाप नहीं है, स्त्री में आसक्ति पाप है।

परिवार पाप नहीं है, फिर क्या है पाप ? परिवार में जो आसक्ति है, वो है पाप।

अगर आसक्ति नहीं रहे तो मनुष्य मुक्त हो जाता है। स्वयं भगवान् ने कहा है –

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥

(गी. ३/१९)

'असक्त' माने आसक्ति रहित होकर के कर्तव्य कर्मों को करो, 'असक्त' होकर कर्म करने से परम पुरुष भगवान् मिल जाते हैं।

हम लोग भगवान् से दूर इसलिए हैं, क्योंकि घर-परिवार, धन-संपत्ति, स्त्री-पुत्रादि में आसक्त हैं। आसक्ति को अगर छोड़ दें तो भगवान् मिल जाएँगे।

लगन हरि से लगा बैठे जो होगा देखा जायेगा

भगवान् की शरण में जाने के बाद किसी चीज की चिन्ता नहीं करनी चाहिए; अगर कोई चिन्ता करता है तो वह भक्त नहीं है। भगवान् ने गीता में कहा है कि –

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥

(गी.२/४५)

योगक्षेम की भी नहीं सोचो। अगर कोई योगक्षेम की सोचता है तो इसके माने भगवान् की अभी शरण नहीं है।

भगवान् की शरण में कैसे जाएँ। जैसे हनुमान जी ने कहा है –

सेवक सुत पति मातु भरोसें ।
रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें ॥

(रा.च.मा.किष्कि. ३)

जिस प्रकार गोद का बच्चा अपनी माँ के भरोसे रहता है, उसको चिंता नहीं रहती कि मैं क्या खाऊँगा, क्या पहनूँगा ? जाड़े में नंगा पड़ा रहता है, माँ ओढ़ा देती है तो ओढ़ लेता है अन्यथा ऐसे ही पड़ा रहता है। उसी तरह सेवक (भक्त) वही है जो अपने स्वामी (प्रभु) के भरोसे निश्चिन्त रहता है। ऐसा सेवक भगवान् को प्राणों से भी प्यारा लगता है।

जो अपने लिए किसी मनुष्य (माता-पिता, स्त्री-पति, बेटा-बेटी....आदि) की आशा करता है, वह भगवान् का भक्त नहीं है; क्योंकि उसको भगवान् पर विश्वास नहीं है। स्वयं भगवान् ने कहा कि मेरा भक्त किसी मनुष्य की आशा नहीं करता है –

मोर दास कहाइ नर आशा।
करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ४६)

भगवान् से प्रेम है तो कुछ मत सोचो। अपना योगक्षेमादि सब भगवान् पर छोड़ दो क्योंकि भगवान् को अपना बनाने के लिए सब कुछ छोड़ना पड़ता है। जैसे ब्रज-गोपियों ने छोड़ा –

नंदलाल सों मेरो मन मान्यो, कहा करैगो कोय री।
हो तों चरणकमल लपटानी जो भावे सो होय री ॥
जो मेरो यह लोक जायेगो और परलोक नसाय री।
नंदनंदन को तोऊ न छाडूँ मिलूंगी निशान बजाय री ॥
यह तन घर बहुरयो नहीं पैये वल्लभ वेष मुरार री।
'परमानंद' स्वामी के ऊपर सर्बस डारों वार री ॥

क्या हुआ ? उन्होंने सब कुछ छोड़ा लेकिन भगवान् के लिए सब कुछ छोड़ने के कारण वे इतनी बड़ी बन गयीं कि सृष्टि को बनाने वाले ब्रह्मा ने भी गोपियों की चरण-रज प्राप्ति के लिए तप किया –

षष्टिवर्ष सहस्राणि पुरा तप्तं मया तपः ।
भक्त्या नन्द ब्रजस्त्रीणां पादरेणूपलब्धये ॥

(वामन पुराण)

सच्ची पढ़ाई

असुर बालकों ने प्रह्लाद जी से पूछा – प्रह्लाद ! तुझे अग्नि में जलाया गया, पहाड़ों से नीचे गिराया गया, समुद्र में डुबोया गया, विषैले सर्पों से डसवाया गया, दिग्गजों से कुचलवाया गया परन्तु तेरी मृत्यु नहीं होती है, ऐसी तेरे अन्दर कौन-सी शक्ति है ?

प्रह्लाद जी – मैंने ऐसी पढ़ाई पढ़ी है, जिससे मैंने काल को जीत लिया है। अगर कोई इस पढ़ाई को पढ़ ले तो वह भी मेरी तरह काल से मुक्त हो सकता है।

असुर बालक – वह कौन-सी पढ़ाई है प्रह्लाद !

प्रह्लाद जी बोले –

परावरेषु भूतेषु ब्रह्मान्तस्थावरादिषु ।
भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च ॥

(भा. ७/६/२०)

ब्रह्मा से लेकर तिनका पर्यन्त समस्त छोटे-बड़े प्राणियों में, पञ्च महाभूतों से रचित वस्तुओं में, तीनों गुणों में और प्रलय में, सृष्टि में सिर्फ एक भगवान् को ही देखना सीख लो। यही सर्वश्रेष्ठ पढ़ाई है। कोई बैरी सामने आया है वह भी भगवान् है, कोई मित्र आया वह भी भगवान है; दुष्ट आया वह भी भगवान् है। सबमें भगवान् को देखो।

भगवान् ने गीता में अर्जुन से भी इस पढ़ाई को पढ़ने के लिए कहा –

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

(गी. ६/९)

अर्जुन ! इस पढ़ाई को पढ़ो, सुहृद, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य, बन्धु, साधु तथा पापियों के प्रति भी समान बुद्धि रखो।

धाम-निष्ठा

ब्रजधाम कृष्ण-कृपा से मिलता है, यहाँ रहकर हर समय प्रभु की आराधना करनी चाहिए। रसिकों ने भी यही कहा है –

वृन्दावन में बसत ही एतो बड़ो सुजान ।
जुगल चन्द के भजन बिन निमिष न दीजे जान ॥

इस धाम में रहने की चतुरता यही है कि एक निमिष का समय भी भजन-सुमिरन के बिना नहीं जाए। अगर हम यहाँ रहकर भी आठ घण्टे सोवें, निकम्मे होकर पड़े रहें, व्यर्थ बातचीत करें, अभाव करें, निन्दा करें, दोषदृष्टि करें तो इससे हमारा नुक्सान होगा, मिली हुयी कृपा नष्ट हो जायेगी। इसलिए जो कृपा हुई है उसका लाभ लो, चौबीसों घण्टे युगल-आराधन में लग जाओ। महापुरुषों ने कहा है –

वृंदावन साँचौ धन भैया ।
कनककूट कोटिक लगि तजिये, भजिये कुँवर कन्हैया ॥

(श्री व्यासवाणी)

यह धाम ही सच्चा धन है। जिसको हम तिजोरी में बंद करके रखते हैं, वह सच्चा धन नहीं बल्कि वह तो मौत है।

अतएव धाम ब्रह्मा, शिव आदि को भी नहीं मिलता है। इसलिए स्वर्ण के एक-दो नहीं, करोड़ों पहाड़ भी मिल रहे हों तो भी उनकी ओर नहीं देखो, तब समझो हमारा धाम में प्रेम हुआ है। लेकिन थोड़े

से लोभ में लोग धाम छोड़ देते हैं, जबकि रसिकों ने लिखा है कि करोड़ों चिंतामणि भी मिल रही हों तब भी मत जाओ।

रे मन वृन्दाविपिन निहार ।
विपिनराज सीमा के बाहर हरिहूँ को न निहार ॥
जद्यपि मिलै कोटि चिन्तामणि तऊ न हाथ पसार ।
जै श्री भट्ट धूलि धूसर तन यह आसा उरधार ॥

(श्रीभट्ट देवाचार्य जी)

गरब गोविन्दहिं भावत नाहीं

भगवान् दीनों पर दया करते हैं। यही बात नारद जी ने बताई –

ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च ॥

(ना.भ.सू. २७)

भगवान् से बड़ा द्वेष करने वाला कोई नहीं है और भगवान् से बड़ा प्रेम करने वाला कोई नहीं है। अभिमान से उनको द्वेष है और दैन्य से प्रेम है। रावण, हिरण्यकशिपु आदि चाहे कोई भी हो, जो भी बड़ा बना, वह भगवान् का प्यारा नहीं बना। रावण ने काल को भी जीत लिया था लेकिन गर्व (अभिमान) के कारण मारा गया, उसी के सामने उसके बेटे-नाती आदि सब मारे गए; जाने कितनी पीढ़ियाँ थीं सब नष्ट हो गयीं।

जैसी तपस्या हिरण्यकशिपु ने की वैसी आज तक न किसी ने की होगी और न कोई कर सकता है। आकाश के तारे टूटने लग गये, समुद्र खौलने लग गया, पृथ्वी हिलने लग गयी, देवता देवलोक छोड़कर भाग गये, ऐसी शक्ति उसने तप के प्रभाव से अर्जित की; वर पाकर के वह मदोन्मत्त हो गया और जब उसने भक्त प्रह्लाद से द्वेष किया, तो भगवान् ने उसे मार डाला।

इसलिए जिसको कल्याण के रास्ते पर चलना है, उसको दीन बनना चाहिए; तब भगवान् की कृपा-वत्सलता मिलेगी।

'अमानी' ही सच्चा भक्त

भक्त बनना बहुत कठिन है और बहुत सरल भी है। न जप की आवश्यकता है, न जोग की और न तप की; बस दीन बन जाओ, भक्त बन जाओगे। दीन वही है, जो मान-सम्मान नहीं चाहता है। मान-सम्मान चाहने का मतलब तुम अहंकारी हो, दीन नहीं हो।

महाराज पृथु ने कहा है –

सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ॥

(भा. ४/१५/२३)

भगवान् के गुणगान के रहते, इस निन्दित शरीर की जो पूजा कराता है, वह भक्त नहीं है।

प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यपि विश्रुताः ।
ह्रीमन्तः परमोदाराः पौरुषं वा विगर्हितम् ॥

(भा. ४/१५/२५)

जैसे लज्जाशील पुरुष अपनी बदनामी से घृणा करता है, वैसे ही जिसको अपनी प्रशंसा से घृणा है, वही भक्त है और वह भगवान् को प्राणों से भी ज्यादा प्यारा है।

सबहि मानप्रद आपु अमानी ।
भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ३८)

हम लोग भक्त नहीं हैं, इसलिए अपने अपमान से, अपनी बदनामी से प्रेम नहीं करते हैं।

मीरा जी का पद है –

राणा जी मोहि यह बदनामी लागै मीठी ।
कोई निन्दो कोई बिन्दो, मैं तो चलूँगी चाल अनूठी ॥

ये हिम्मत मीरा में है, अपनी बदनामी से प्रेम करना। यही हिम्मत भक्तों में होती है।

सूरदास जी ने लिखा –

'सब कोऊ कहत गुलाम राम को सुनत सिराय हियो ॥'

हमको लोग गुलाम कहते हैं, इस बात को सुन करके हमारा हृदय ठण्डा हो जाता है। भक्त बनना है तो इन बातों को सीखो, आज सारा संसार मान-सम्मान का भूखा है। लोग वहीं जाते हैं, वहीं खाते हैं, वहीं बैठते हैं, वहीं बोलते हैं जहाँ मान-सम्मान मिलता है। इसको छोड़ो अगर सच्चा भक्त बनना है।

सबसों ऊँची प्रेम सगाई

भगवान् न तो ज्ञान से मिलते हैं, न योग, यज्ञ, तपस्यादि से –

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा ।
किएँ जोग तप ग्यान बिरागा ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ६२)

भगवान् में प्रेम है तो तुम पापी हो, दुराचारी हो, फिर भी तुम्हारा कल्याण हो जायेगा; और प्रभु में प्रेम नहीं है तो –

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ ।
जहँ न राम पद पंकज भाऊ ॥

(रा.च.मा.अयो. २९१)

उस सुख-सम्पत्ति, कर्म, धर्म में आग लगा दो, जहाँ भगवान् का प्रेम नहीं है।

यही बात सूरदास जी कह रहे हैं कि सबसे ऊँचा है – भगवान् में प्रेम होना।

'सबसों ऊँची प्रेम सगाई।'

यही बात प्रह्लाद जी ने कही है –

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम्॥

(भा. ७/७/५१, ५२)

भगवान् केवल प्रेम (भक्ति) से रीझते हैं, बाकी अन्य जितने साधन हैं – दान, तप, यज्ञ, शौच-सदाचारादि, अगर भगवान् में प्रेम नहीं है तो ये सब विडम्बना मात्र हैं।

गोविन्द स्वामी जी ने भी यही कहा है –

प्रीतम प्रीत ही तें पैये।
जद्यपि रूप गुन सील सुघरता इन बातनि न रिझैये॥
सत कुल जनम करम सुभ लच्छन वेद पुरान पढ़ैये।
'गोविन्द' प्रभु बिना स्नेह सुबा लों रसना कहा नचैये॥

भगवान् भी बिकता है

मीराबाई ने कहा है –

माई री मैं तो लियो गोविंदो मोल।
कोई कहै हलको कोई कहै भारो, लियो री तराजू तोल॥

मैंने कृष्ण को खरीद लिया।

क्या भगवान् भी बिकता है?

हाँ, भगवान् भी बिकता है।

स्वयं भगवान् ने कहा है –

तुलसीदल मात्रेण जलस्य चुल्लुकेन वा ।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः ॥

'मैं एक तुलसीदल, एक चुल्लू पानी पर भक्तों के हाथों बिक जाता हूँ। हमें कोई भी खरीद ले।'

ऐसा जो सर्वशक्तिमान है उसको खरीद लेता है भक्त; अपना सब कुछ समर्पण कर दो और भगवान् को खरीद लो। लेकिन दुर्भाग्य है हम जैसे लोग लड्डू-कचौड़ी, रुपया-पैसा, भोग में बिक जाते हैं। जो लड्डू-कचौड़ी में, मल-मूत्र में बिक गया वो भगवान् को क्या खरीदेगा ? भगवान् को तो वही खरीद सकता है जिसने यह मान लिया कि यह अनन्त धन-सम्पत्ति सब कृष्ण की है, पर हम जैसे तो नोटों का बण्डल बाँधते हैं, भगवान् को क्या खरीदेंगे। हम तो नोटों-भोगों में खुद बिक गए। खुद अठन्नी-चवन्नी दास बन गए।

नामदेव जी ने लिखा है –

'बैठिया प्रीति मजूरी माँगे, जो कोउ छानि छबावै ।
भाई बंधु सगे सों तोरै, बैठिया आपुहि आवै ॥'

कोई भी उससे अपना काम करा ले, लेकिन उसकी मजूरी है 'प्रीति' (प्रेम)।

स्वयं भगवान् ने कहा है, हमको खरीदने के लिए सबसे सम्बन्ध तोड़ने पड़ेंगे।

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥

(भा. ९/४/६५)

'दारा' स्त्री से, 'आगार' मकान, जमीन-जायदाद से, 'पुत्र' बेटा-बेटी से, 'आप्त' माता-पिता, बन्धु-बान्धवों से, 'प्राण' प्राणों से, 'वित्त' धन से, 'इमम्' इस लोक के भोगों से, 'परम्' परलोक के भोगों से मन को हटा लो और केवल ममता हममें रखो।

जननी जनक बंधु सुत दारा।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४८)

चाहे माँ है, चाहे बाप है, बेटा है, बेटी है, स्त्री है, कोई भी सगा-सम्बन्धी है, अगर ममता कहीं भी रहेगी तो तुम भगवान् को नहीं खरीद पाओगे। हिम्मत करके सब सौंप दो और खरीद लो भगवान् को। मीरा ने सब कुछ छोड़ा तब उन्होंने भगवान् को खरीदा और चाहे जैसे नचाया।

मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई।
तात-मात-भ्रात-बन्धु, आपनो न कोई॥

सच्ची लगन

मीराबाई जी ने अपनी सखियों से कहा –

तुम संसार में क्यों फँसती हो? संसार में सुख नहीं है। संसारी आदमी पति बन जाता है, फिर वह एक दिन मर जाता है। अविनाशी पति भगवान् श्यामसुंदर को अपना वर बनाओ, अमर सुहागिन बनोगी।

सखियों ने पूछा – क्या वह हमको मिल सकता है ? पार्वती जी ने बड़ा तप किया था तब उन्हें शिव जी मिले थे।

मीरा ने कहा – हाँ, अगर सच्ची लगन होगी तो अवश्य मिलेगा और झूठी लगन है – संसार के विषय-भोगों की इच्छा है तो नहीं। इसलिए –

'लगनी लहंगा पहिर सुहागिन'

ऐसी लगन लगाओ कि मौत भी सामने आ जाये तो भी उससे तुम्हारा प्रेम न हटे। जैसी मैंने लगन लगायी –

मुझे जहर पीना पड़ा, मुझे मारने के लिए सर्प भेजे गये, भूत महल में मुझे बंद किया गया, विष-शैय्या भेजी गयी, ऐसी स्थिति में भी मेरी प्रभु से लगन नहीं छूटी।

इसलिए तुम लगन का लहँगा पहनोगी तो अवश्य वह मिलेगा।

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

(रा.च.मा.बाल. २५९)

भक्त प्रह्लाद की भी ऐसी ही लगन थी।

उनको आग में जलाया गया, समुद्र में डुबोया गया, दिग्गजों से कुचलवाया गया, तब भी वे अपनी निष्ठा से नहीं डिगे।

सबसे बड़ा धन

प्रह्लाद जी ने कहा है –

'यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक्॥'

(भा. ७/१०/४)

जो भगवान् की भक्ति तो करता है, पर प्रत्युपकार में भगवान् से पैसा, भोग, कामनाओं की पूर्ति की चाह रखता है, वो भक्त-वक्त कुछ नहीं, वो तो व्यापारी (बनिया) है। इसलिए हर व्यक्ति को चाहिए कि भगवान को पकड़ो, भगवान के भरोसे रहो, सच्चे भक्त बनो, कमजोर नहीं बनो।

कबीर दास जी ने भी कहा है –

कबिरा सब जग निर्धना धनवंता नहीं कोय ।
धनवंता सोइ जानिए जाके राम नाम धन होय ॥

अरे ! जो पैसों को पकड़ता है, वो धनवान-बनवान कुछ नहीं वो तो महा भिखमंगा है; सबसे बड़ा धन तो प्रभु है पर हम लोग साधु बनकर भी पैसे को पकड़ते हैं, लड्डू-पेड़ा, भोगों को पकड़ते हैं फिर भगवान् कहाँ से मिल जाएगा।

मीरा जी ने भी कहा है –

'पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो ।'

जब भगवान् सच्चा धन है तो फिर पैसों को क्यों पकड़ता है ? जो भगवान को छोड़कर पैसे को पकड़े, वो भक्त नहीं है।

'भक्त' भगवान् से बड़े हैं

किसी भक्त में भावना करना भगवान् की भक्ति से भी बड़ा है। भगवान् ने भागवत में कहा भी है कि हमारे भक्त की पूजा हमारी पूजा से बड़ी है –

'मद्भक्तपूजाभ्यधिका'

(भा. ११/१९/२१)

तुलसीदास जी ने भी यही कहा है –

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा ।
राम ते अधिक राम कर दासा ॥

(रा.च.मा.उत्तर. १२०)

लेकिन यह बात जीवन में आ नहीं पाती है।

आदिपुराण में भगवान् ने कहा है –

ये मे भक्तजनाः पार्थ ! न मे भक्ताश्च ते जनाः ।
मद्भक्ताश्च ये भक्ता मम भक्तास्तु ते नराः ॥

जो हमारी भक्ति करते हैं, वे भक्त नहीं हैं, जो हमारे भक्तों की भक्ति करते हैं, वही मेरे असली भक्त हैं।

भक्त का शरीर भी पंचभौतिक होता है, उसमें शरीरगत् विकार दिखाई पड़ते हैं, कहीं कोई भक्त बीमार है, कोई गरीब है, ऐसी स्थिति में भी उनमें दोष दिखते हुए भी प्राकृत बुद्धि न आये, यही है उपासना।

षष्टिवर्ष सहस्राणि विष्णोराराधनं फलम्।
सकृद् वैष्णव पूजायां लभते नात्र संशयः॥

साठ हजार वर्ष तक तुमने भगवान् की पूजा की, उससे तुम्हें जो फल मिलेगा, वह भक्त की एक बार पूजा करने से मिल जाता है।

वराह पुराण में भगवान् ने कहा है –

मद्वन्दनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु वन्दनम्।
मत्कीर्तनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु कीर्तनम्॥
मत्सेवनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु सेवनम्।
मद्भोजनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु भोजनम्॥

हमारी वन्दना से सौ गुना बड़ी है हमारे भक्त की वन्दना करना। हमारे कीर्तन से सौ गुना बड़ा है हमारे भक्त का कीर्तन करना। हमारी सेवा से सौ गुना बड़ी है, हमारे भक्त की सेवा करना। हमको छप्पन भोग लगाने से सौ गुना बड़ा है, हमारे भक्त को भोजन पवाना।

गरुण पुराण में भी कहा गया है –

सिद्धिर्भवति वा नेति संशयोऽच्युत सेविनाम्।
निःसंशयस्तु तद्भक्त परिचर्यारतात्मनाम्॥

भगवान् की सेवा से सिद्धि मिलेगी कि नहीं इसमें संशय है परन्तु भक्त-सेवा से निश्चय ही सिद्धि मिलती है, इसमें जरा-भी संशय नहीं है।

वाल्मीकि जी ने भगवान् से कहा था –

राम भगत प्रिय लागहिं जेही ।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥

(रा.च.मा.अयो. १३१)

हे प्रभो ! उसके हृदय में आप निवास करो, जिसका भक्तों से प्रेम हो।

अन्तःकरणस्थ विषय-कीच को कैसे हटायें ?

जब हमारा हृदय कमल बन जायेगा तब भगवान् आ जायेंगे। अभी तो कमल नहीं है, क्योंकि अभी उसमें विषयों की कीच भरी हुई है। दुष्ट इन्द्रियाँ विषयों की कीच लाती हैं और अन्तःकरण में जमा कर देती हैं। विषय अन्तःकरण को केवल गन्दा करता है। यह बात श्रीमद्भागवत में कही गयी है। ये सड़ी कीच जो हमारे मन में जमा है – काम की, क्रोध की, लोभ की, मोह और मत्सरादि की; इसे मनुष्य दूर नहीं कर सकता है, न मनुष्य में इतनी शक्ति है। फिर कैसे दूर होगी ? केवल भगवान् का नाम, रूप, लीला गाओ, यह जो अनादिकाल की सड़ी कीच है, यह दूर हो जायेगी।

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां
कथामृतं श्रवणपुटेषु सम्भृतम् ।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं
व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ॥

(भा. २/२/३७)

विषय से अन्तःकरण दूषित हो जाता है, हम जितना मल-मूत्र भोगते हैं, वह सब सीधे हमारे अन्तःकरण में संस्कार रूप में जमा हो जाता है, इसीलिए भोग-भोगने वाले मनुष्य को शूकर कहा गया, क्योंकि शूकर वहीं रहता है, जहाँ मल-मूत्र रहता है। अतः सब

गन्दगियाँ मन में जमा हैं, और वे एकमात्र भगवान् के कथामृत-कीर्तनामृत से ही दूर हो सकती हैं।

कथा-कीर्तनामृत कहाँ मिलेगा ?

श्रृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥
नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥

(भा. १/२/१७, १८)

वहाँ जाओ, जहाँ भक्त-संतजन रहते हैं, वहाँ तुमको कृष्ण-चर्चा सुनने को मिलेगी, बस वहाँ रहो, सेवा करो और श्रद्धा के साथ कथा सुनो, बिना बुलाये भगवान् बहुत जल्दी कान के छिद्र से घुसकर तुम्हारे अन्तःकरण में आ जायेंगे और तुम्हारे हृदय में आकर सब गन्दगियों को धुन देंगे, यानी नष्ट कर देंगे; और जब हृदयगत् गंदगियाँ दूर हो जायेंगी, तब भगवान् के चरणों में तुम्हारी नैष्ठिकी भक्ति हो जायेगी।

धन का एकमात्र फल 'धर्म'

पैसे का फल क्या है ? 'धर्म'।

धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशान्ति ।
गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य मृत्युं न पश्यन्ति दुरन्तवीर्यम् ॥

(भा. ११/५/१२)

'धर्म' माने दान-पुण्य नहीं; 'धर्म' माने भागवत धर्म (भगवान् और भक्तों की सेवा करना)।

कोई कहे कि ये तो बड़ी नासमझी का काम है कि सब पैसा भगवान् और भक्तों की सेवा में लगा दो। इससे हमको क्या मिलेगा ?

'ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशान्ति'

इससे तुमको ज्ञान मिलेगा, अनुभवात्मक ज्ञान सहित; अनन्त शान्ति मिलेगी।

लेकिन होता क्या है ?

जहाँ मनुष्य की ममता होती है, वहीं खर्च करता है। गृहस्थी है तो वह 'गृहेषु युञ्जन्ति' अपने घर-परिवार, स्त्री, पुत्रादि में लगाता है और साधु है तो वह अपने 'कलेवरस्य' शरीर में, इन्द्रिय-सुखों में लगाता है।

इसका परिणाम क्या है ?

वही पैसा तुमको मृत्यु देगा, काल बनकर खा जायेगा। क्योंकि पैसा हमारा-तुम्हारा नहीं है।

यह बात सबसे पहले भागवत में कही गयी है –

'नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥'

(भा. १/२/९)

अगर पैसा आ गया तो वह केवल धर्म के लिए, भगवान् व भक्तों की सेवा के लिए है। धन का फल कामना-पूर्ति नहीं है।

बोले – मन तो कामना करेगा।

'कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।'

(भा. १/२/१०)

कामना इन्द्रिय-प्रीति के लिए नहीं होनी चाहिए। जीवन-निर्वाह – बस इतना हक है तुम्हारा।

सारा संसार नरक क्यों भोग रहा है ?

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

(भा. ७/१४/८)

तुम्हारे पेट का गड्ढा जितने में भर जाय, बस इतना अधिकार है तुम्हारा। इससे ज्यादा जो अपना मानता है, संग्रह करता है, वह चोर है और दण्ड पायेगा। क्या दण्ड मिलेगा ?

भगवान् ने स्वयं कहा –

'इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥'

(भा. ११/२३/१५)

जब तक जीवित हो वह पैसा तुम्हें ताप-संताप देगा और मरने के बाद निश्चित नरक मिलेगा, इसमें शंका नहीं करना, यह स्वयं भगवान् कह रहे हैं।

सबसे बड़ा पापी – निन्दक

जो निन्दक होता है, वह इतना मीठा बन जाता है, कहता है कि भाई ! हम तो तुम्हारे हित के लिए कह रहे हैं। निन्दक तुम्हारी तारीफ करेगा और तारीफ सुनकर मनुष्य प्रसन्न हो जाता है और निन्दा सुनने लगता है। उससे उसका सर्वनाश हो जाता है। निन्दक मीठा बनता है और मीठा बनकर अभाव का जहर दे देता है। भक्तों में अभाव करना सबसे बड़ा पाप है। निन्दक अभाव पैदा करा देता है, जिससे सर्वनाश हो जाता है –

साधु निन्दा अति बुरी, भूलि करो जनि कोय।
कोटि जन्म के सुकृत को, पल में डारै धोय॥

भक्तों की निन्दा करने से करोड़ों जन्मों का पुण्य एक क्षण में नष्ट हो जाता है। जैसे कितना भी बड़ा पैट्रोल पम्प है, दियासलाई की एक तीली उसमें लगाओ और सब खत्म। इसी तरह किसी भक्त की निन्दा की, उसी समय सब सुकृत (पुण्य) खत्म।

भगवती सती जी ने कहा है –

संत संभु श्रीपति अपबादा।
सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा॥
काटिअ तासु जीभ जो बसाई।
श्रवन मूदि न त चलिअ पराई॥

(रा.च.मा.बाल. ६४)

कोई किसी की निन्दा कर रहा है, कान बंद करके वहाँ से निकल जाओ अगर तुम असमर्थ हो तो और समर्थ हो तो उसी समय उसकी जीभ काट डालो, जिससे वह आगे यह निन्दा रूपी पाप न कर सके। क्योंकि –

'परनिंदा सम अघ न गरीसा॥'

(रा.च.मा.उत्तर. १२१)

दूसरों की निन्दा करना, निन्दा सुनकर प्रसन्न होना और निन्दा का समर्थन करना; इससे बड़ा पाप न कोई था, न है और न होगा।

इसीलिए कबीरदास जी ने कहा है –

कबिरा निंदक न मिलै पापी मिलै हजार।
एक निन्दक के शीश पर कोटिन पाप पहार॥

एक निन्दक के शीश पर करोड़ों पापों के पहाड़ रहते हैं, यदि निन्दा सुनोगे तो दस-बीस पहाड़ तुम्हारे सिर पर भी पटक देगा। इसलिए हजार पापियों से बड़ा है एक निन्दक।

अर्थ ही सबसे बड़ा अनर्थ

धन को लोग अर्थ बोलते हैं लेकिन है ये अनर्थ क्योंकि धन में पन्द्रह दोष होते हैं –

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥

(भा. ११/२३/१८, १९)

१. स्तेयम् (छिपाना, चोरी करना) – स्त्री पति से पैसा छिपाती है, बेटा बाप से, शिष्य गुरू से, व्यापारी अधिकारियों से छिपाता है। अतः धन आया और पहला अनर्थ 'स्तेय' आ गया।

२. हिंसा – हिंसा के बिना पैसा इकट्ठा नहीं होता है, कोई आदमी मर रहा है, हमारे पास पैसा है, हम उसको संग्रह करके रखते हैं पर दे नहीं सकते – यह हिंसा है। चन्दा, दान (donation) माँगना यह हिंसा है। कबीरदास जी ने कहा है –

बिन माँगे सो दूध सम, माँगे मिले सो पानी ।
कबिरा सो तो रक्त सम, जामें खेंचातानी ॥

माँगना, खेंचातानी करना, देने वाला कह रहा हम दस रुपये देंगे, लेकिन हमने कहा कि नहीं पचास दो, यह खेंचातानी है। अतः ये हिंसा है।

३. अनृतम् (झूठ बोलना) – बिना झूठ बोले पैसा नहीं बचता है, हर इंसान पैसे के पीछे झूठ बोलता है।

४. दम्भः (दिखावापन) – पैसा वाले बड़े बन-ठन कर चलते हैं कि हम बड़े कुबेर के बाप हैं, यह दम्भ है।

५. कामः (काम) **–** पैसा आते ही इच्छाएँ पैदा हो जाती है कि इसको कहाँ खर्च करें।

६. क्रोधः (क्रोध) **–** किसी ने पैसा छीनना चाहा, लेना चाहा तो क्रोध आयेगा, पैसा कहीं खो गया तो क्रोध आता है।

७. स्मयः (ऐंठ) – जिसके पास पैसा है, उसमें अकड़ आ आती है, सेठ जी दक्षिणा देते हैं तो ऐसे नोट फेंकते हैं जैसे बड़े दाता हों, कुबेर के बाप हों।

८. मदः (नशा) – जैसे बीड़ी-सिगरेट, मदिरा का नशा होता है, वैसे ही पैसे का नशा हो जाता है, वह छूटता नहीं है।

९. भेदः (भेद) **–** पैसे के पीछे घर-घर में फूट पड़ जाती है। भाई, भाई से अलग हो जाता है, बेटा 'बाप' से, स्त्री 'पति' से अलग हो जाती है। ये मेरा-तेरा करना भेद है।

१०. बैरम् (शत्रुता) **–** धन के कारण से आपस में शत्रुता हो जाती है।

११. अविश्वासः – कोई पैसा न ले ले, किसी पर वह विश्वास नहीं करता, सब पर शंका करता है।

१२. संस्पर्धा – होड़ बुद्धि रहती है, व्यापारी व्यापारी से होड़ करते हैं, एक नेता दूसरे नेता से होड़ करता है।

'व्यसनानि' में तीन व्यसन आते हैं -

१३. मद्यपान – पैसा होता है तभी मनुष्य शराब पीता है।

१४. द्यूत – जुए में पैसे बर्बाद करता है।

१५. लाम्पट्य – पैसे से ही मनुष्य भोग भोगता है।

अतः इन १५ अनर्थों का मूल है पैसा, चाहे साधु-संत हैं, चाहे गृहस्थी है, चाहे विद्वान् है, पैसा है तो ये १५ दोष अवश्य रहेंगे, इसका नाम अर्थ है लेकिन वास्तव में ये है अनर्थ, लोग एक कौड़ी के लिए एक-दूसरे के शत्रु बन जाते हैं, एक-दूसरे की हत्या कर देते हैं, शिष्य 'गुरु' की हत्या कर देता है, बेटा 'बाप' की हत्या कर देता है सिर्फ एक कौड़ी के पीछे।

इसको महापुरुषों ने भी कहा है –

पैसा पापी साधु कौं परसि लगावै पाप।
बिमुख करै गुरु इष्ट ते उपजावै संताप॥
उपजावै संताप ज्ञान वैराग्य बिगारे।
काम क्रोध मद लोभ मोह मत्सर सिंगारै॥
सब द्रोहिनि मैं सिरे भक्त द्रोही नहिं ऐसा।
भगवत रसिक अनन्य भूल जिन परसौ पैसा॥

(भगवत रसिक जी)

इसको छूने से ही दोष लगता है। 'धन' गुरु व इष्ट सबसे विमुख कर देता है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य को भी नष्ट कर देता है। पैसे से परोपकार हो ही नहीं सकता, पैसा चिपक जाता है अर्थात् उसमें आसक्ति हो जाती है। जब पैसा आता है तो मनुष्य संग्रह करने लगता है, बैंक में जमा करने लगता है, जबकि परिग्रह ही मनुष्य के दुःख का सबसे बड़ा कारण है।

परिग्रहो हि दुःखाय यद् यत्प्रियतमं नृणाम्।
अनन्तं सुखमाप्नोति तद् विद्वान् यस्त्वकिञ्चनः॥

(भा.११/९/१)

संग्रह सबसे बड़ा दुःख है परन्तु लोगों को संग्रह ही सबसे अधिक प्यारा लगता है। यहाँ तक कि धर्म के लिए भी धन का संग्रह नहीं करना चाहिए। अपने आप सब काम भगवान् करता है। एक कहावत है **'अन्धे की मक्खी खुदा उड़ाता है'** भगवान् का भरोसा पकड़ो, अपने आप प्रभु सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

शरणागत का पालन भगवान् करते हैं

श्रुतियों में कहा गया है – **मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव।** माता ईश्वर रूप है, पिता ईश्वर रूप है, आचार्य भी ईश्वर रूप

होता है और फिर अन्यत्र वेदवाणी कहती है **'यद्हरेव विरजेत तद्हरेव प्रव्रजेत्'** जिस समय तुम्हारा सांसारिक-सम्बन्धों में राग हटे अर्थात् विराग हो जाए, उसी समय घर-परिवार सब छोड़ दो, सन्यास ले लो। उम्र से कोई मतलब नहीं जिस समय तुम्हारा राग हट गया तो उसी समय घर छोड़ दो।

एक तरफ वेद कहता है – माता-पिता, आचार्य ये सब ईश्वर हैं और वही वेद कह रहा है कि तुम्हारा राग नहीं तो घर-परिवार सब छोड़ दो। वेद में इस तरह की उल्टी बातें क्यों कहीं गयीं, इसका समाधान क्या है ? जबकि वेदवाणी साक्षात् ब्रह्म-वाणी है, तो इसका समाधान भगवान् ने गीता में किया है –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गी.१८/६६)

यह श्लोक गीता का सार है। भगवान् बोले – सर्वधर्म अर्थात् पितृधर्म, मातृधर्म, पातिव्रतधर्मादि जितने भी धर्म हैं, उन सबको छोड़कर केवल एक मेरी शरण में आओ और धर्म छोड़ने का तुम्हें जो पाप लगेगा, उस पाप से तुम्हें मुक्त मैं करूँगा। पाप तो लगेगा ही क्योंकि किसी का पिता बीमार है, माँ अकेली है और ऐसी स्थिति में उनको छोड़ दिया तो पाप तो लगेगा ही परन्तु उन सब पापों को प्रभु नष्ट करते हैं।

इसलिए भगवान् के लिए सब कुछ छोड़ दो। देह, गेहादि की आसक्ति छोड़कर उन्हीं की शरण में जाओ। परिवार के भरण-पोषण की चिंता नहीं करो, जो सच्चे भाव से भगवान् की शरण में जाता है, उसके कुटुम्ब का पालन-पोषण स्वयं भगवान् करते हैं **'प्रनत कुटुंब पाल रघुराई ॥'** (रा.च.मा.अयो. २०८) नहीं तो लोग कमा-कमाकर मर जाते हैं और फिर भी पूर्ति नहीं पड़ती क्योंकि वहाँ वह अहंता को

लेकर चलते हैं। जो भगवान् पापियों को, दुष्टों को, चोरों को, सभी को भोजन-पानी देता है, जब तुम भगवान् की शरण में जाओगे तो क्या तुम्हारे घर-परिवार का पालन-पोषण नहीं करेगा।

भोजनाच्छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः ।
योऽसौ विश्वम्भरो देवः स किं भक्तानुपेक्षते ॥

इसलिए भगवान् की शरण में जाकर ये नहीं सोचना चाहिए कि हमारे परिवार का क्या होगा ? जो भगवान् की शरण में है उसे अपनी जीवन यात्रा चलाने के लिए भी धन संग्रह नहीं करना चाहिए।

भगवान् से मिलने का सुगम रास्ता – सत्संग

केवल सत्संग ही एकमात्र भगवान् से मिलने का सच्चा साधन है।

सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः ।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥

(भा. ११/१२/३)

सत्संग से ही दैत्य, राक्षस, हिरण, पशु-पक्षी, गन्धर्व-अप्सराओं आदि ने भगवान् की प्राप्ति की।

मति कीरति गति भूति भलाई ।
जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ ।
लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥

(रा.च.मा.बाल. ३)

आज तक जिस किसी को जो भी गति मिली, मति मिली, कीर्ति मिली या जो कुछ भी मिला वह केवल सत्संग से ही मिला है। इनकी प्राप्ति का सत्संग के अलावा न लोक में कोई उपाय है, न वेद में।

इसलिए शिव जी ने कहा है –

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान ॥

(रा.च.मा.उत्तर. १२५)

हे पार्वती ! संत समागम के समान दुनिया में कोई लाभ न था, न है और न होगा। किन्तु बिना भगवान् की कृपा के सत्संग नहीं मिलता है और बिना सत्संग के भक्ति नहीं मिलती है।

भगवान् राम ने कहा था –

भगति तात अनुपम सुखमूला ।
मिलइ जो संत होइँ अनुकूला ॥

(रा.च.मा.अरण्य. १६)

पुनः

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी ।
बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ४५)

भक्ति अनन्त सुख देती है परन्तु तभी मिलती है, जब कोई अनुकूल संत मिल जाएँ।

सब कर फल हरि भगति सुहाई ।
सो बिनु संत न काहूँ पाई ॥
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा ।
राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा ॥

(रा.च.मा.उत्तर. १२०)

प्रभु की भक्ति सभी साधनों का फल है लेकिन बिना संतों के संग के नहीं मिलती है। इसलिए जो सत्संग करते हैं, उन्हें भक्ति की प्राप्ति सुलभ है।

मीराबाई से लोगों ने कहा था कि तू सन्तों का संग करना छोड़ दे नहीं तो मारी जायेगी। उन्होंने कहा कि मैं जहर पीकर मरना अच्छा

समझती हूँ, लेकिन साधु संग नहीं छोड़ सकती हूँ, ऐसा प्रेम होना चाहिए सत्संग के प्रति ।

संयम यज्ञ

देखो, भोगों को छोड़ना एक बहुत बड़ा तप है, तप ही नहीं बड़ा भारी यज्ञ है । गीता में भगवान् ने कहा – यज्ञ तो आदमी चलते-फिरते कर सकता है । यज्ञीय पदार्थों, हविष्यादि की जरूरत नहीं है । संयम यज्ञ तुम चलते-फिरते कर सकते हो । बिस्तर पर लेटे-लेटे कर सकते हो । भगवान् बोले –

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥

(गी. ४/२६)

अपनी इन्द्रियों को संयम कर लिया, यज्ञ हो गया । आँख, कान, मुँह, हाथ, पाँव आदि सभी इन्द्रियों से यज्ञ हो सकता है । कहीं (ग्राम्य-चर्चा) अर्थात् सांसारिक-चर्चा चल रही है, परनिंदा या भोग की चर्चा चल रही है, उसे कान से मत सुनो, बस यज्ञ हो गया । लेकिन जीव उसे सुनता है और देखता है और उसमें रुचि लेता है, पाप का भागी होता है । आँखें हैं, अशुभ वासना से किसी को देख रही हैं । पुरुष 'स्त्री' को देख रहा है या स्त्री 'पुरुष' को, बार-बार दृष्टि जा रही है; बस आँखों को रोक लिया, यज्ञ हो गया । भोजन करने गये, अयुक्त भोजन है, नहीं किया, यज्ञ हो गया या अधिक खा लिया तो पाप हो गया –

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥

(गी. ४/३०)

उतना ही खाया, जितने से प्राण बना रहे तो वो भोजन 'यज्ञ' है। इस तरह चलते-फिरते यज्ञ हो सकता है। कहीं जा रहे हैं – कामना के कारण जा रहे हैं तो जाना पाप हो गया।

सूरदास जी ने कहा है –

काया हरि कैं काम न आई ।
भाव-भक्ति जहँ हरि-जस सुनियत, तहाँ जात अलसाई ॥
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ, तहाँ सुनत उठि धाई ॥

लोभ है भोग का या विषयों का, लोभ है वहाँ पैसा मिलेगा, वहाँ काम-भोग मिलेगा, इसलिए दौड़ता चला जा रहा है। तो यह पाँव से पाप है। इन्द्रियाँ संसार की ओर जा रही हैं तो पाप हो रहा है, रोक लिया यज्ञ हो गया।

सबसे बड़ा अज्ञान – अपने को कुछ मानना

सृष्टि अनन्त है, ऐसे-ऐसे सूर्य हैं कि उनके सामने यह सूर्य तो एक किनका के बराबर है, उससे पता पड़ता है कि अनन्त है संसार। जैसे पृथ्वी के कण हैं, इनसे भी छोटा है सूर्य तो हम लोग कितने छोटे हैं, इसका अंदाज ही नहीं लगा सकते हैं।

लेकिन आश्चर्य है कि इस अनन्त सृष्टि में हर आदमी अपनी सत्ता समझता है, कोई समझता है – हम ज्ञानी हैं; कोई कहता है – हम बड़े विरक्त हैं; कोई कहता है – हम बड़े धनवान हैं, परन्तु सच्चाई यही है कि कुछ नहीं हैं हमलोग। ***अपने को कुछ भी समझना, ये सबसे बड़ा अज्ञान है।*** ज्ञान क्या है ? 'अमानित्व' अपने को कुछ भी नहीं मानना, यही संसार का सबसे बड़ा ज्ञान है। अगर आदमी अपने को कुछ भी मानता है कि हम पढ़े-लिखे हैं, हम विद्वान् हैं, हम पूज्य हैं, हम भक्त हैं, हम प्रेमी हैं ....आदि तो ये मूर्खता है, सबसे बड़ा अज्ञान है। भगवान्

ने गीता में ज्ञान के बीस बिन्दुओं में 'अमानित्व' (अपने को कुछ नहीं मानना) को पहला बिन्दु बताया। परन्तु आज ऐसा कौन है, जो अपने को कुछ न कुछ न मानता होगा। हर आदमी अपने को कुछ न कुछ मान लेता है, इसलिए दिखाने लग जाता है कि हम समझदार हैं, हम पढ़े-लिखे हैं, हम विरक्त हैं, और इससे ज्ञान के बाद तुरन्त दम्भ आ जाता है। जिसमें बिल्कुल दिखावा न हो, ऐसा कौन है दुनिया में ?

चैतन्य महाप्रभु जी ने कहा है कि तुम अपने को साधु-सन्यासी मानते हो, ये भी गलत है **'नो वनस्थो यति-र्वा'** अपने को कुछ भी समझना गलत है। फिर क्या मानें ?

'गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दास-दासानुदासः ।'

अपने को दासों के दास के दास समझो अर्थात् छोटे से छोटा समझो, यही सच्ची भक्ति है।

प्रेमाभक्ति प्राप्ति की सबसे पहली सीढ़ी 'श्रद्धा'

श्रद्धा के बिना कोई साधन फल नहीं देता है – न दान, न तप, न सत्संग और न किसी सद्ग्रन्थ का पाठ। रामायण में लिखा है –

जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ ॥

(रा.च.मा.बाल. ३८)

लोग खूब पाठ करते हैं लेकिन श्रद्धा नहीं तो सारे जीवन पाठ करते जाओ, कुछ नहीं मिलेगा।

इसी बात को भगवान् ने गीता में कहा कि –

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥

(गी. १७/२८)

श्रद्धा रहित यज्ञ, दान, तप या जो भी शुभ कर्म किया जाता है, वह सब असद् हो जाता है, उसका न इस लोक में कोई फल मिलता है और न ही परलोक में। इसलिए सबसे पहली सीढ़ी है 'श्रद्धा'।

भक्तों का कोप भी कृपा है

भागवत में दशम स्कन्ध के दशवें अध्याय में 'यमलार्जुन-उद्धार' की कथा आती है – ये पूर्वजन्म में कुबेर के लड़के थे, इनका नाम था नलकूबर और मणिग्रीव। ये दोनों बड़े भोगी थे। एक दिन एक सरोवर में मदिरा पान करके देवांगनाओं के साथ नग्न विहार कर रहे थे। नारद जी वहाँ से निकले तब भी ये दोनों नंगे बने रहे, लज्जा नहीं, संकोच नहीं। नारद जी ने कृपा की और शाप दे दिया कि जाओ तुम जड़ बन जाओ, वृक्ष बन जाओ, अतः ब्रजभूमि में आकर वे वृक्ष बने और जिस भगवान् की प्राप्ति करोड़ों जन्म तक तप करने के बाद भी नहीं होती है, उस भगवान् की प्राप्ति उन दोनों को नारद जी के क्रोध से हो गयी। करोड़ों वर्षों की तपस्या से जो चीज नहीं मिलती है वह भगवद्भक्त के क्रोध से मिल गयी। इसलिए भगवद्भक्त में सदा भाव रखना चाहिए, उसके क्रोध, हिंसा आदि को देखकर भी उसमें भाव रखना चाहिए।

ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्त-
स्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ।
वाण्यानुरागकलयाऽऽत्मजवद् गृणन्तः
सम्बोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥

(भा. ३/१६/११)

भक्त चाहे गाली दे रहा है, पीट रहा है फिर भी उसकी पूजा करनी चाहिए। जिस समय वह मार रहा है, उस समय भी उसकी पूजा करो। यद्यपि यह बड़ा कठिन है, परन्तु अगर ऐसा करते हो तो इससे तुम भगवान् को जीत लोगे। भगवान् को जीतने का यह बड़ा सरल उपाय

है। भक्त यदि क्रोध करते हैं तो भी उनकी पूजा करते जाओ। ऐसा स्वयं भगवान् भी करते हैं।

एक बार वैकुण्ठ में भृगु ऋषि गए, उस समय भगवान् शयन कर रहे थे, लक्ष्मी जी चरण दबा रही थीं तो भृगु जी ने जाकर भगवान् के वक्षःस्थल पर जोर से लात मारी, भगवान् के नेत्र खुले, उन्होंने उठकर भृगु जी के चरण पकड़ लिये और कहा –

अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने।
इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना॥

(भा. १०/८९/१०)

'हे मुनिवर ! आपके चरण तो बड़े कोमल हैं और हमारी छाती बड़ी कठोर है, आपको अवश्य कष्ट हुआ होगा, आपके चरणों में कहीं चोट तो नहीं लगी। मुझे पहले से अंदाज नहीं था कि आप आ रहे हैं, आपने ठीक किया जो लात मारी, मुझे उठकर सम्मान करना चाहिए था, मेरी भूल थी। आपने सही किया।'

इस जगह अगर हम लोग होते और किसी ने लात मारी होती तो कम से कम प्रश्न तो जरूर पूछते कि क्यों मारा और बल्कि बदला भी लेते। लेकिन भगवान् कहते हैं – "जैसा मैं कहता हूँ, करके भी दिखाता हूँ; ऐसे तुम भी बनो।" इस तरह यदि मनुष्य बन जाएगा तो भगवान् को जीत लेगा। यद्यपि ऐसा भाव होना बहुत कठिन है कि मारने वाले में भगवद्बुद्धि की जाय। लेकिन ऐसा करोगे तो भगवान् को वश में कर लोगे। कोई भक्त खीज रहा है, हमारा तिरस्कार कर रहा है, हमको गाली दे रहा है फिर भी हम उसकी पूजा-अर्चना करें और सच्चे मन से सन्तुष्ट होकर पूजा करें, ऐसा नहीं कि ऊपर से पूजा-अर्चना कर रहे हो और अन्दर से बदला लेने की भावना है।

सन्तुष्ट होकर भक्त की पूजा करो। जैसे भगवान् ने भृगु जी से कहा कि आपने अच्छा किया जो मुझे मारा। मारा सो मारा लेकिन आपको

जो कष्ट हुआ उसके लिए मैं क्षमा माँगता हूँ। जैसे 'बेटा' माँ की गोद में मल-त्याग कर देता है तो उसे माँ मारती नहीं, हँस जाती है, उसके मल को धोती है, प्रसन्न होती है अथवा 'पुत्र' अगर माता-पिता रूठ जाएँ तो उनको मनाता है। इस तरह का उन भक्तों के साथ आचरण करो, प्रेम की कलाओं से युक्त वचन बोलो। बहुत कठिन है ऐसा बनना। मुँह पर उदासी नहीं आनी चाहिए, मुस्कुरा दो। कोई लात मार रहा है तो मुस्कुरा दो। उस मुस्कुराहट रूपी अमृत से तुम्हारा मुख-कमल खिल जाए। इसी को भक्ति कहा गया और जब ऐसा भावमय व्यवहार होता है तो निश्चय मनुष्य भगवान् को जीत लेता है।

भय का कारण – देह-गेहासक्ति

विदुर जी ने धृतराष्ट्र से कहा था –

गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः।
अविज्ञातगतिर्जह्यात् स वै धीर उदाहृतः॥

(भा. १/१३/२५)

"भैया ! ऐसी जगह शरीर छोड़ो, जहाँ कोई पानी देने वाला भी न हो, दवाई आदि की बात तो दूर रही, किसी को पता ही न लगे कहाँ मरे, उसको धीर कहते हैं।"

हम लोग सोचते हैं कि मरते समय हमारी कौन सेवा करेगा ? ईश्वर-आश्रय नहीं पकड़ते, जीवों के आश्रित रहते हैं। इसीलिए न सच्चा वैराग्य है, न सच्ची भक्ति है, न ज्ञान है, कुछ नहीं है। परीक्षित ने जब शरीर छोड़ा तो वे असंग (अनासक्त) हो चुके थे, भगवद्-रूप हो गए थे। जब तक्षक आया उनको काटने के लिए तो उससे पहले ही परीक्षित ब्रह्मभाव में स्थित हो गए थे। परीक्षित जी को शमीक ऋषि के पुत्र श्रृंगी ऋषि ने शाप दिया था, उन्होंने जब सुना कि हमको आज से सातवें दिन तक्षक सर्प काटेगा। तब वे बोले –

स साधु मेने नचिरेण तक्षका-
नलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ॥

(भा. १/१९/४)

अरे ! ये शाप नहीं ये तो वरदान है, बड़ा अच्छा हुआ जो हमको शाप मिल गया क्योंकि मैं राजा था, मेरा बहुत विशाल राजपाट था, रानी थी, चार लड़के थे, सभी योग्य थे और मेरी उन सबमें आसक्ति थी, ऋषि ने अनुग्रह किया जो शाप दे दिया, अब मेरी गृहासक्ति कट जायेगी, नहीं तो उसी में सड़कर हम मरते। चार पुत्र हैं उनका विवाह होता फिर उनकी संतानें होतीं, जिससे आसक्ति का क्षेत्र और बढ़ता। अब ये शाप मेरी विरक्ति करा देगा, वैसे तो पता ही नहीं पड़ता कब मर जाते।

अतएव उन्होंने उस शाप की प्रशंसा की; जबकि हम जैसे लोग होते तो तक्षक आने वाला है, यह सुनकर तक्षक के काटने के पहले ही घबड़ाकर मर जाते। लेकिन परीक्षित जी ने उस शाप को अच्छा माना। ***हर परिस्थिति में भगवान् की कृपा का अनुभव करना ही साधुता का लक्षण है।*** परीक्षित जी ने तुरन्त राजपाट छोड़ दिया और हरिद्वार के पास गंगा जी के किनारे चले गये। इससे उन्होंने शिक्षा दी कि मौत से डरते क्यों हो ? ये गलत है डरना। मनुष्य डरता क्यों है ? क्योंकि उसकी आसक्तियाँ हैं संसार में। नारद जी ने कहा है कि ये आसक्तियाँ ही मृत्यु के भय का कारण हैं –

यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः
सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् ।
शङ्केत विद्वान् कुकलेवरात्ययाद्
यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥

(भा. ५/१९/१४)

हम लोगों का भजन एक श्रम है क्योंकि आसक्तियाँ हैं शरीर में, संसार के भोगों में – हमारा आश्रम, हमारा धन, हमारी स्त्री, हमारे

बच्चे; जब तक इस संसार की और परलोक की आसक्तियाँ हैं कि मरके नरक तो नहीं जायेंगे, तब तक हमारा भजन एक श्रम मात्र है। ऐहिक और आमुष्मिक दो प्रकार की कामनाएँ हैं, जीने की और मरने की, इन कामनाओं में हम लम्पट हैं, फँसे हैं। हम चिंता करते हैं – हमारे बेटा का क्या होगा ? हमारे माँ-बाप क्या खायेंगे ? हमारी स्त्री क्या खायेगी ? हमने इतना पैसा इकट्ठा किया, घर-मकान जमीन-जायदाद बनाया, उसका क्या होगा ? बस ये सब सोचते रहते हैं और इसी में ये अमूल्य जीवन गँवा देते हैं। इसलिए मौत से डरते हैं, शंका होती है। अतः भगवान् का आश्रय लो, एक दिन मरना तो है ही, फिर बेटा-बेटी का क्या आश्रय लेते हो। अगर कोई कहे कि हमारी परिवार में आसक्ति नहीं है, ठीक है मान लिया परन्तु इस शरीर में तो आसक्ति है कि कहीं हम मर न जाएँ। आश्रय भगवान् का नहीं है इसलिए भय होता है।

अतः परीक्षित जी ने विचार किया कि अब कुछ नहीं सोचना है, न अपने बारे में, न स्त्री के और न बच्चों के बारे में। अब तो यही सोचना है कि कृष्ण-गुणगान किसी तरह से होवे।

इसलिए उन्होंने कहा था कि काटने दो तक्षक को, बस भगवान् के गुण गाओ और बोले 'मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम्' अब मुझे मृत्यु का भय नहीं है। शुकदेव जी ने भी कहा है कि राजन् ! तू शंका मत कर कि तक्षक काटेगा, हम मर जाएँगे। अरे, अब तुमको मौत भी नहीं छू सकेगी। तू मौत का मौत बन गया है –

"मृत्यवो नोपधक्ष्यन्ति मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् ।"

(भा. १२/५/१०)

शंका तो हम जैसे लोगों को आती है क्योंकि हम शरीर में आसक्त हैं और शरीर के कारण से ही स्त्री, बेटा-बेटी, धन, सम्पत्ति इनमें आसक्त हैं। महापुरुषों ने कहा है कि 'पुरुष' स्त्री पर दो मिनट के लिए

चढ़ता है लेकिन 'स्त्री' पुरुष की खोपड़ी और छाती पर चौबीसों घण्टे चढ़ी रहती है, उसकी आसक्ति चौबीस घण्टे बनी रहती है। हमने धन इकट्ठा किया, पर धन तो साथ नहीं जाएगा, धन तो वहीं का वहीं रहा लेकिन धन की आसक्ति बराबर बनी रहती है, वह कभी नहीं घटती है, मर जाते हैं फिर भी नहीं घटती है।

सबसे बड़ी उपलब्धि भक्त-संग का मिलना

ध्रुव जी ने भगवान् से माँगा था –

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥

(भा. ४/९/११)

हे प्रभो ! हमें भक्तों का संग मिल जाय; कौन-से भक्त ? जिनकी आपमें अविच्छिन्न रूप से भक्ति की धारा बह रही है। उनके संग से क्या मिलेगा ? ध्रुव जी बोले – ये जो भयानक भवसागर है, उसे मैं उन भक्तों के संग से आराम से बिना मेहनत के पार कर जाऊँगा। क्या वे भक्त कन्धे पर बिठाकर ले जायेंगे तुमको। बोले – नहीं, उनके यहाँ हर समय जो आपका कथा-कीर्तन होता रहता है, बस उस अमृत को पीकर मैं आराम से भवसागर को पार कर जाऊँगा।

इसीलिए यामुनाचार्य जी ने कहा है –

तव दास्यसुखैकसङ्गिनां भवनेष्वस्त्वपि कीटजन्म मे ।
इतरावसथेषु मास्मभूदपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना ॥

हे भगवान् ! मुझे ब्रह्मा बनना पसन्द नहीं है, मैं तो किसी भक्त के घर में कीड़ा-मकोड़ा बन जाऊँ, वह ज्यादा अच्छा है क्योंकि ब्रह्मा बनने के बाद भी जीव माया से नहीं छूट सकता है ।

गीता में कहा गया है –

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥

(गी. ८/१६)

ब्रह्मलोक तक माया है, वहाँ से निर्धारित समयावधि के बाद नीचे आना पड़ता है। भक्त के यहाँ कीड़े-मकोड़े बनेंगे तो वहाँ दिन-रात भगवद्गुणगान सुनने को मिलेगा और कभी न कभी भगवान् के नाम से उद्धार हो ही जाएगा। इतनी दूर तक दृष्टि है आचार्यों की, इसलिए उन्होंने कहा – कीट बनना हमको पसन्द है, न कि किसी पदवी पर पहुँचना ।

विरोध से होता है भक्त महिमा का प्राकट्य

भक्तों का विरोध होता है, जितने भी आज तक सच्चे भक्त हुए हैं, सबका विरोध हुआ। भक्तमाल जी में तो लिखा है कि भगवान् स्वयं जान-बूझकर विरोधियों को प्रकट कर देते हैं। इसका प्रमाण है – भक्त रैदास जी का चरित्र। रैदास जी प्रेमपूर्वक ठाकुर सेवा करते थे, स्वयं भगवान् ने **'प्रेरि दिये हृदै जाय द्विजनि'** ब्राह्मणों के हृदय में प्रेरणा की कि रैदास की सेवा का विरोध करो ।

अस्तु भगवान् ऐसा क्यों करते हैं ? क्योंकि विरोध से ही भक्तों की महिमा प्रकट होती है। आज प्रह्लाद जी की इतनी महिमा क्यों

है ? क्योंकि उनका इतना विरोध हुआ था कि उन्हें आग में जलाया गया, पानी में डुबोया गया, सर्पों से डसवाया गया, हाथियों से कुचलवाया गया, अनेक प्रकार की यातनाएँ उनको दी गयीं, लेकिन जितना उनका विरोध हुआ, उतना ही उनका यश फैला। इसी तरह कलियुग के भक्तों में कबीर, मीरा आदि की इतनी महिमा इसलिए है कि उनका बहुत विरोध हुआ था। यह एक शाश्वत नियम है। इसलिए विवेकानन्द जी ने कहा है कि जिसका तगड़ा विरोध हो, समझो वही भक्त है –

Opposition is sure way to success

श्रीभक्तमाल जी में प्रियादास जी भी यही कहते हैं –

'जिते प्रतिकूल मैं तो माने अनुकूल याते
सन्तनि प्रभाव मनि कोठरी की तारी है।'

(श्रीभक्त.कवित्त. २६५)

'जितने भी भक्तों का विरोध करने वाले दुष्ट लोग हैं, उन्हें मैं भक्तों का विरोधी न मानकर, अनुकूल मानता हूँ; क्योंकि दुष्टों के विरोध करने से ही भक्तों की महिमा प्रकाशित होती है, विरोधी लोग ही भक्त-यश रूपी मणियों की कोठरी की ताली (चाबी) हैं। अर्थात् जब दुष्ट लोग भक्तों का विरोध करते हैं, तभी उनकी महिमा का पता पड़ता है और भक्ति का प्रचार-प्रसार होता है।

इसलिए अगर विरोध नहीं हुआ तो वह भक्त नहीं है। विरोध होने का मतलब ही है कि बंद कोठरी में जो मणियाँ छिपी हैं, उसको अब भगवान् प्रकट कराना चाहते हैं अर्थात् भक्तों के हृदय में जो भक्ति रूपी मणियाँ छिपी हुयी हैं, भगवान् विरोध कराकर उनको प्रकट करवाते हैं। अगर विरोधी लोग विरोध न करें तो भक्तों के गुणों का प्रकाश ही नहीं होगा। इसीलिए भगवान् स्वयं भक्तों का विरोध करवाते हैं।

परन्तु उस विरोध का भक्तों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उनके मन में जरा-भी प्रतिकार की भावना नहीं आती है। इससे उनके साधुपने का गुण प्रकट होता है। कोई गाली दे रहा है, अपशब्द कह रहा है और भक्त मुस्कुराता रहता है तभी तो साधुपना प्रकट होता है, नहीं तो मान-सम्मान पाकर तो सभी प्रसन्न होते हैं।

अस्तु सच्चा भक्त वही है, जो विरोध होने पर भी मुस्कुराता रहे।

खूदन तो धरती सहै, कूट काट वनराय।
कुटिल बचन साधु सहै, और से सह्यो न जाय॥

सन्त-असन्तों के लक्षण

गोस्वामी तुलसीदास जी साक्षात् वाल्मीकि जी के अवतार थे। उन्होंने जो रामायण लिखी, उसको महादेव जी ने वेदों और पुराणों से ऊपर रखा। विश्वनाथ जी के मंदिर में सभी ग्रन्थ रखे गये; लेकिन महादेव जी ने तुलसीदास जी की बनायी रामायण को सबसे ऊपर रख दिया। यह कथा भक्तमालजी में है। ऐसा महादेव जी ने इसलिए किया क्योंकि गोस्वामी जी की रामायण में जो सिद्धान्त हैं, वे निश्चित कल्याणमय हैं और भक्ति देने वाले हैं। रामायण का जो अर्थ है, उसको उत्तरकाण्ड में उन्होंने बीसों चौपाइयों में कहा है। लेकिन मूल भक्ति हम लोग समझ नहीं पाते। अन्त में उत्तरकाण्ड के १२१वें दोहे के शुरु में उन्होंने कहा है कि संसार में सबसे बड़ा सुख है – सन्तों-भक्तों का मिलना।

"संत मिलन सम सुख जग नाहीं॥"

कैसे सन्त ? लाल कपड़ा वाले कि पीला कपड़ा वाले। नहीं, सदा जो परोपकार करते हैं, सदा कष्ट सहते हैं दूसरों के कल्याण के लिए, उसको संत कहते हैं।

पर उपकार बचन मन काया ।
संत सहज सुभाउ खगराया ॥
संत सहहिं दुख परहित लागी ।
परदुख हेतु असंत अभागी ॥

जैसे – प्राचीन समय में कागज नहीं था तो भोजवृक्ष की छाल पर ग्रन्थ लिखे जाते थे। उस पेड़ की छाल को लोग निकालते थे। छाल भी पेड़ का अंग है। पेड़ जीव है, छाल निकालने पर उसको कष्ट होता है।

भूर्ज तरू सम संत कृपाला ।
परहित निति सह बिपति बिसाला ॥

उसी तरह साधु भी भोजवृक्ष के समान होता है, अपने शरीर की चमड़ी भी लगा देता है परोपकार के लिए – उसको संत कहते हैं।

खल किसको कहते हैं ?

खल बिनु स्वारथ पर अपकारी ।
अहि मूषक इव सुनु उरगारी ॥

जो दूसरे लोगों के दुःख का कारण होते हैं। खल का सारा जीवन केवल दूसरों को दुःख देने में जाता है। दूसरों को कष्ट देना, दूसरों का यश नष्ट करना, वे बस इसी में लगे रहते हैं। ऐसा करने में उनको मिलता कुछ नहीं है। चूहा जहाँ भी रहेगा, कपड़े काट देगा, सिवाय नुक्सान के और कुछ नहीं करता। दुष्ट लोग ओले के समान होते हैं। जैसे ओला गिरता है, गल जाता है लेकिन खेती को नष्ट कर देता है, वैसे ही खल होते हैं, जो स्वयं तो नष्ट होते ही हैं लेकिन सौ-पचास को नष्ट करके मरते हैं।

बिना संत-संग के भक्ति नहीं

हर मनुष्य को इतना ही समझना चाहिए कि भगवान् की भक्ति, भजन ही सार है और इसी में आत्म-कल्याण है। व्यर्थ में तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिए। बस, ये समझना चाहिए कि भगवान् की कृपा से हमें सत्संग मिल जाए, इतना ही समझना काफी है। भगवान् शंकर ने कहा है –

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥

(रा.च.मा.उत्तर. १२५)

"हे पार्वती ! इस संसार में संत-समागम के समान लाभ कुछ नहीं है। अगर किसी को संत-समागम मिल गया तो समझो उस पर भगवान् की कृपा हो गयी। वेदों-पुराणों में भी यही लिखा है।" अतः हमको यह भी समझना चाहिए कि यदि भगवान् नहीं मिले तो कोई बात नहीं, अगर भक्त-संग मिल गया तो भगवान् के मिलने से भी ज्यादा उपलब्धि समझो। ये स्वयं तुलसीदास जी कह रहे हैं कि मेरा ऐसा निजी विश्वास है कि 'भक्त' भगवान् से बड़े हैं –

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा।
राम ते अधिक राम कर दासा॥

(रा.च.मा.उत्तर. १२०)

तर्क-वितर्क छोड़कर केवल उनका संग करो, भगवान् का गुणगान गाओ और भगवान् में प्रेम करो – बस। क्योंकि सन्तों के संग के बिना भक्ति नहीं मिलती है।

राम सिंधु घन सज्जन धीरा ।
चंदन तरु हरि संत समीरा ॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई ।
सो बिनु संत न काहूँ पाई ॥

(रा.च.मा.उत्तर. १२०)

जैसे समुद्र में जल है, लेकिन अनन्त है और समुद्र सबको प्राप्त नहीं है, क्योंकि दूर है; और अगर प्राप्त भी हो जाए तो समुद्र का जल खारा है, किसी के भी काम का नहीं है। परन्तु वही पानी जब बादल बरसा कर देता है तो सबके काम का हो जाता है।

अस्तु भगवान् समुद्र हैं और सन्तजन बादल हैं, वे समुद्र के खारे जल को पीने के योग्य बनाकर देते हैं। पीने योग्य पानी क्या है ? भगवान् का माधुर्य अर्थात् भगवान् की मधुर लीलाएँ। खारा पानी क्या है ? ज्ञान अनन्त है, भगवान् का ऐश्वर्य अनन्त है, उसमें से सन्तों ने भगवान् की लीला रूपी मक्खन निकाला, उतना ही सन्तजन देते हैं, इसलिए वे बादल हैं। दूसरी उपमा दी गयी है –

'चंदन तरु हरि संत समीरा ॥'

चन्दन के पेड़ मलयगिरि में हैं। वहाँ जाओ तो चन्दन पर अनेक सर्प लिपटे होते हैं, वे काट लेंगे। हर कोई वहाँ जा भी नहीं सकता है। पहुँचेगा भी तो वहाँ सर्प हैं, खतरा है। उसी चन्दन की सुगन्ध को जब वायु लाती है तो न तो उसमें जहर होता है, न सर्प होता है। कोई खतरा नहीं होता। सन्तजन हवा हैं। सर्प क्या है ? मोह ही सर्प है। बिना सत्संग के भगवान् की लीलाओं में मोह उत्पन्न हो जाता है। ब्रह्मा जी को हुआ, सती जी को हुआ, गरुड़ जी को हुआ। संशय रहित, मोह रहित विशुद्ध संतों के द्वारा जहाँ भगवान् की लीलाओं का गान हो रहा है, वह चन्दन की सुगन्ध है, उसको सूँघो, अर्थात् उन सन्त-भक्तों का संग करो, भक्ति अपने-आप मिल जायेगी।

राधे किशोरी दया करो

हे किशोरी राधारानी ! आप मेरे ऊपर दया करिये। इस जगत में मुझसे अधिक दीन-हीन कोई नहीं है अतः आप अपने सहज करुण स्वभाव से मेरे ऊपर भी तनिक दया दृष्टि कीजिये।

राधे किशोरी दया करो ।
हम से दीन न कोई जग में, बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा, यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषय विष ज्वाल माल में, विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में, दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और (विषय) की, हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहुँ तो करुणा करोगी श्यामा, यही आस ते द्वार पर्यो ॥

मेरे मन में यह सच्चा विश्वास है कि श्यामा जू सदा से दीनों पर दया करती आई हैं। मैं अनादिकाल से माया के विषम विष रूपी विषयों की ज्वालाओं से उत्पन्न अनेक प्रकार के तापों की आग में जलता आया हूँ। इस जगत में आपका अवतार दीनों के कल्याण के लिए हुआ है। हे दीनों का पालन करने वाली श्री राधे ! कृपा करके आप मेरे हृदय में निवास कीजिये। मैं आपका दास होकर भी संसार के विषयों और विषयी प्राणियों से सुख पाने की आशा किया करता हूँ। आप मेरी इस विमुखता के क्लेश का हरण कर लीजिए। हे श्यामा जू ! जीवन में कभी तो ऐसा अवसर आएगा जब आप मेरे ऊपर करुणा करेंगीं, इसी आशा के बल पर मैंने आपके द्वार पर डेरा जमा लिया है।

श्री मान मंदिर सेवा संस्थान से प्रकाशित सत्साहित्य	
पुस्तक का नाम	**पुस्तक में वर्णित विषय-वस्तु**
रसीली ब्रज यात्रा (लेखिका – सुश्री मुरलिका शर्मा)	ब्रज चौरासी कोस की समस्त लीला-स्थलियों की महिमा
बरसाना	श्रीबाबा महाराज द्वारा रचित पद (गजल)
रसिया रसेश्वरी	ब्रज-लोक-गीत
स्वर वंशी के शब्द नूपुर के	'श्रीबाबा महाराज द्वारा रचित कीर्तन' संगीत संकेतन (musical notation) सहित
प्रह्लाद सभा	सूर, तुलसी, मीरा, कबीर आदि महापुरुषों के पदों का संग्रह
प्रभात फेरी (भगवन्नाम महिमा)	भगवन्नाम की महिमा
गह्वर वन तरंगिनी	श्रीबाबा महाराज का दिव्य सत्संग
'मानिनी यश मुक्तामाला' **प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय भाग**	श्रीबाबा महाराज का दिव्य सत्संग
सारग्राहिता **प्रथम व द्वितीय भाग**	श्रीबाबा महाराज के सत्संग से संग्रहीत सारगर्भित वचन
भक्तद्वय चरित्र	भक्त जयदेव व बिल्वमंगल जी का चरित्र (पद्य रूप में)

प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –

श्री मान मंदिर सेवा संस्थान गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उत्तर प्रदेश)
ms@maanmandir.org
+91-98376-79558
+91-99273-38666